3288

'वेद और महाभारत क उपदेशरत्न'

प्रसिद्ध नाम

उपदेश कुसुमाञ्जलि।

द्वितीय भाग

जिसको पं० राजाराम संस्कृत प्रोफैसर डी०ए०
वी० कालेज लाहौर व सम्पादक आर्षग्रन्था-
वलि लाहौर ने सम्पादन किया।

'इस में परमात्मा की महिमा, प्रार्थना और धर्मोपदेश
विषय के वेदमन्त्र, तथा महाभारत के
शिक्षाप्रद श्लोकों का संग्रह है'।

बाम्बे मैशीन ग्रन्त्रालय लाहौर में
मुनीचन्द मैनेजर के अधिकार से छपी।

२५ मार्च १९०९ मूल्य =)

डा० अचानीलाल [illegible]
13-7-2 संख्या
वेदमन्त्राः
पुस्तकालय

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः । सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव (ऋग् ०१।४२।१५)

इन्द्र जिसकी भुजा में वज्र है, वह उस सब का राजा है, जो चलता है और खड़ा है, और जो शान्त है और लड़ाका है, हां, वही राजा सब मनुष्यों पर राज्य करता है, वह इस तरह सब को घेरे हुए है, जैसे रथकी नेमि (धारा) अरों को घेरे हुए होती है।

इन्द्रो ह दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम्। इन्द्रो वृधामिइन्द्र इन्मेधिराणा मिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः (ऋग्०१०।८९।१०)

इन्द्र द्यौ और पृथिवी पर राज्य करता है, इन्द्र जलों और मेघों पर राज्य करता है, इन्द्र बढ़ने वालों पर और समझ वालों पर राज्य करता है, इन्द्र प्राप्ति में प्रार्थनीय है और इन्द्र रक्षा में प्रार्थनीय है, (जो कुछ चाहते हो, इन्द्र से मांगो, और जो पालिया है, उसकी रक्षा के लिये भी इन्द्र

को पुकारो)।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र ꣳ हवे हवे सुहव ꣳ शूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूत मिन्द्र ꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः (यजु०२०।५०)

मैं उस शूरवीर इन्द्र को पुकारता हूं, जो हमारा रक्षक है और हमारा सहायक है, और हमारी हर एक पुकार को सुनता है, जो शक्ति से भरा हुआ है, जिस को सब पुकारते हैं, वह इन्द्र हमें कल्याण दे।

अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रमस्मभ्यं चित्राँ उपमाहि वाजान्। अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धी रस्माकं सु मघवन् बोधि गोदाः (ऋग्०४।२२।१०)

हे इन्द्र! हमारी प्रार्थना को सुनो, हमारे लिये आश्चर्य शक्तियां दो, हमें सारे ऐश्वर्य और बड़ी बुद्धि दो, हे धन के मालिक और गौओं के दाता! हमें पहचान (हमारे ऊपर विशेष अनुग्रह कर)॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते। अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो

गव्यन्तस्त्वा हवामहे (यजु०२७।३६)

हे इन्द्र तेरे तुल्य न द्यौ पर और न पृथिवी पर व
और है, न हुआ है न होगा, हे धन के मालिक! हम बल व
होकर घोड़े और गौओं को चाहते हुए तुझ को बुलाते है

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृ
पतिर्भूः । विश्वमाप्रा अन्तरिक्षमहित्वा सत्यम
नकिरन्य स्त्वावान् (ऋग्०८।५१।२)

तू पृथिवी का तोल है, तू बड़े दर्शनीय वीरों व
लोक का पति है, तूने अपनी महिमा से सारे अन्तरिक्ष
भरदिया है। यह सत्य है, कि तेरे सदृश कोई नहीं है।

यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे। ज्यो
विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा (ऋग्०८।२४।२१)

जिसकी शक्तियें अपरिमित हैं, जिसकी दात से
बढ़ नहीं सक्ता है, जिसकी दक्षिणा (पुरस्कार,इनाम) ज
की तरह सब के ऊपर है।

नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम्
नकिर्वक्ता न दादिति (ऋग्०८।३२।१५)

इसकी शक्तियों का और सच्चे उदार वचनों (मेहरबानियों) का कोई नियन्ता नहीं है। कोई नहीं कह सक्ता, कि उसने मुझे नहीं दिया है।

सख्ये त इन्द्र वाजिनो माभेम शवसस्पते ।
त्वामभिप्रणोनुमो जेतारमपराजितम् (ऋग्० १।११।२)

हे इन्द्र! हे बल के मालिक! तेरी मित्रतामें हम बलवान् होकर किसी से न डरें, हम तेरी ही वार २ स्तुति करते हैं, जिसकी सदा जय है और कभी पराजय नहीं है।

बलं देहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वंहि बलदाअसि ।
(ऋग्० ३।५३।१८)

हे इन्द्र हमारे शरीर में बलदे, हमारे पशुओं में बलदे, (दीर्घ और उत्तम) जीवन के लिये हमारी सन्तान और सन्तान की सन्तान के लिये बलदे, क्योंकि तुम बल के दाता हो।

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रतिब्रुवे युजा (ऋग्० ७।३१।६)

हे शत्रुओं के मारने वाले! तू (मेरे शरीर का) कवच (ज़िरह बक्तर) है बड़ा फैला हुआ। तू मेरा पुरोयोद्धा (सब

से आगे युद्ध करने वाला) है। तुझ मित्र के साथ मिलकर मैं कोई परवाह नहीं करता हूं*।

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् (ऋग्०२।२१।६)

हे इन्द्र! हम को श्रेष्ठ धन, दक्ष (होश्यार) पुरुष की समझ, सौभाग्य, ऐश्वर्य की पुष्टि, अंगों की अरोगता, वाणी की मिठास और दिनों की अनुकूलता दे।

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्। इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि (अथर्व०३।४०।३)

हे इन्द्र! हमें नीचे से शत्रुरहित करो, ऊपर से शत्रु रहित करो। हमें पीछे से शत्रु रहित करो। और सामने से शत्रुरहित करो।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते (ऋग्० १०।१९१।२)

आपस में मिलो और संवाद करो तुम्हारे मन एक ज्ञान वाले हों, जैसे पहले विद्वान् एक ज्ञान वाले होकर ऐश्वर्य

---

* प्रतिब्रुवे = अक्षरार्थ, मैं आह्वान (चैलेंज) देता हूं।

का सेवन करते थे।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समान मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जोहवीमि(ऋग्०१० । १९१ । ३)

तुम्हारा मन्त्र समान हो, सभा समानहो, मन समान हो और वृत्तियां समान हों, मैं तुम्हारे लिये समान मन्त्र का उपदेश देता हूं, और समान हवि से तुम्हारे लिये होमता हूं।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ॥ समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति

(ऋग्१० । १९१ । ४)

तुम्हारा अभिप्राय एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों, तुम्हारा मन एक हो, जिससे तुम्हारा शुभ मेल सदा बनारहे।

महाभारत के उपदेश।

(१) पूर्वकाल में पूरे ब्रह्मचर्य का क्या प्रभाव था।

राजा जनमेजय के प्रति पूर्वकाल का वर्णन करते हुए वैशम्पायन कहते हैं :—

न बाल एव म्रियते तदा कश्चिज्जनाधिप।
न चास्त्रियं प्रजानाति कश्चिदप्राप्तयौवनः।

(आदि० ६४ । १७)।

हे राजन्! उस समय कोई बाल ही नहीं मरता था, और न ही कोई यौवन में पहुंचे विना स्त्री को जानता था।

(२) सत्य का बल–राजा दुष्यन्त ने कण्व ऋषि के आश्रम में शकुन्तला को पत्नीभाव से स्वीकार किया। और उसे वहीं छोड़कर घर चला आया। फिर जब समय पाकर कण्व से भेजीहुई शकुन्तला दुष्यन्त के पास आई, और दुष्यन्त ने उसके साथ अपना पतिभाव का सम्बन्ध स्वीकार न किया, तब वह लज्जित हुई दुःख से अचेतन सी होगई। पहले तो वह एक खम्भे की तरह निश्चल खड़ी रही। फिर कुछ देर सोच में रहकर भर्ता की ओर देखती हुई कहने लगी–

जानन्नपि महाराज कस्मादेवं प्रभाषसे। न जानामीति निः शङ्कं यथाऽन्यः प्राकृतो जनः।२३। अत्र ते हृदयं वेद सत्यैस्यवानृतस्य च। कल्याणं वद साक्ष्येण मात्मानमवमन्यथाः।२४। योऽन्यथा-सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते। किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिण।२५। एकोहमस्मीति च मन्यसे त्वं न हृच्छयं वेत्सि मुनिं पुराणम्। यो वे-

दिता कर्मणःपापकस्य तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि।२६। यमो वैवस्वतस्तस्य निर्यातयति दुष्कृतम्। हृदिस्थितः कर्मसाक्षी क्षेत्रज्ञो यस्य तुष्यति। २९। नतु तुष्यति यस्यैष पुरुषस्य दुरात्मनः। तं यमः पापकर्माणां वियातयति दुष्कृतम्। ३०। योऽवमन्यात्मानात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते। न तस्य देवाः श्रेयांसो यस्यात्मापि नकारणम्। ३१।

(आदि०७४)।

हे महाराज! आप जानते हुए भी किसतरह निःशंक होकर कहरहे हैं, कि मैं नहीं जानता हूं, जैसे कोई प्राकृत जन (निःशंक होकर हृदय के विरुद्ध कह देता है)। २३। इसमें सच और झूठ को तेरा हृदय जानता है, (हृदय) की साक्षी से अपने लिये भला कहो, अपने आत्मा का अपमान मतकर। २४। जो अन्दर से कुछ और होकर बाहर कुछ और मानता है, उस चोर ने कौनसा पाप नहीं किया, जिसने अपने आत्मा को चुराया है। २५। तू जानता है, कि मैं अकेलाहूं (अर्थात् दूसरा कोई मेरे इस झूठ का जानने वाला नहीं)

पर तू नहींजानताहै,कि तेरे हृदयमें एक सनातनमुनि(चुपचाप अन्तर्यामी) है,जो तेरेपापका जाननेहार है,तू उसके सामने पाप कररहा है।२६। वैवस्वत यम(काल)उसके दुष्कर्मको मिटा देता है, जिसका हृदय में स्थित कर्मों का साक्षी, जो क्षेत्रज्ञ है, वह सन्तुष्ट हैं। २९। पर जिसका यह (हृदय स्थित क्षेत्रज्ञ) सन्तुष्ट नहीं, उस पाप कर्मी नीच को यम विविध यातनाओं (पीड़ाओं) में डालता है। ३०। जो कोई अपने हृदय की साक्षी के विरुद्ध स्वीकार करने से आप अपना अपमान करता है, उसके देवता भी कल्याणकारी नहीं होते, जिसका आत्मा ही कल्याणकारी नहीं है। ३१।

सत्यधर्मच्युतात्पुंसः क्रुद्धादाशीविषादिव । अनास्तिकोऽप्युद्विजते जनः किं पुनरास्तिकः । ९५ । वरं कूपशताद्वापी वरं वापीशतात् क्रतुः । वरं क्रतुशतात्पुत्रः सत्यं पुत्रशता द्वरम् ।१०१। अश्वमेधसहस्रंच सत्यं च तुलया धृतम्। अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते । १०२ । नास्ति सत्यसमो धर्मो न सत्याद्विद्यते परम् । नहि तीव्रतरं किञ्चि-

दनृतादिह विद्यते।१०४। राजन् सत्यं परं ब्रह्मसत्यं च समयः परः । मात्याक्षीः समयं राजन् सत्यं संगतमस्तु ते।१०५।अनृते चेत्प्रसंगस्ते श्रद्दधासि न चेत्स्वयम्। आत्मना हन्त गच्छामि त्वादृशे नास्ति संगतम् । १०६ । (आदि० ७४)

सत्यधर्म से गिरे हुए पुरुष से नास्तिकजन भी इस तरह डरता है, जैसे क्रुद्ध हुए सर्प से, क्या फिर आस्तिक ९५ ॥ सौ कुएं से बावली श्रेष्ठ है, सौ बावली से यज्ञ श्रेष्ठ है, सौ यज्ञ से पुत्र श्रेष्ठ है, और सत्य सौ पुत्र से बढ़कर है ।१०१। सहस्र अश्वमेध और सत्य तुला पर धराजावे, तो सहस्र अश्वमेध से सत्य ही बढ़ता है।१०२। सत्य से बढ़कर धर्म नहीं, सत्य से कुछ परे नहीं और झूठ से बढ़कर कोई तीव्रतर (ज्यादह सख्त) नहीं । १०४। हे राजन्! सत्य परब्रह्म है, सत्य असली प्रतिज्ञा है हे राजन्! प्रतिज्ञा को भंग मतकर, तेरे साथ सत्यका मेल हो । १०५ । और यदि तेरी झूठ में आसक्ति है, और तू स्वयम् विश्वास नहीं करता है, तो शोक ! यह मैं स्वयं चली जाती हूं, तेरे जैसे में मेल नहीं (अर्थात् सत्य से गिरा हुआ पुरुष संगति के योग्य नहीं) । १०६ ।

(३) युधिष्ठिर का धर्म में आदर और उसके धर्मभाव से लोगों में उसका आदर—युधिष्ठिर के धर्मभाव ने लोगोंको इतना मोहित करलिया था, कि जब वह बनको गए, तो बहुत से धार्मिक जन बिन कहे उनके साथ बन को तय्यार होगए, उन्हों ने कहा—

येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्चकर्मच।तान् सेवेत तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योपि गरीयसी ।

(वन० १।२७)

जिन के यह तीन शुद्ध हैं, विद्या, वंश और कर्म, उन का सेवन करना चाहिये, उनकी संगति शास्त्रों से भी बढ़कर है।

युधिष्ठिर को भी धर्म पर इतना विश्वास था, कि जब जय कौरवों की ओर से दूत बनकर युधिष्ठिर के पास आया, तो युधिष्ठिर ने अपने बल का प्रबल भरोसा यह दिखलाया—

नहीदृशाः सन्त्यपरे पृथिव्यां ये योधका धार्तराष्ट्रेण लब्धाः। धर्मस्तु नित्यो मम धर्म एव महाबलः शत्रुनिबर्हणाय (उद्योग० ३१।४७)।

बेशक और ऐसे योद्धा सारी पृथिवी पर नहीं हैं, जैसे दुर्योधन को मिलगए हैं। पर (याद रक्खो) धर्म अटल है, वह धर्म ही मेरी ओर महाबली शत्रुओं के मारने के लिये है।

यह विश्वास उसका सच्चा था, क्योंकि वह विषम अवस्थाओं में भी धर्म को नहीं हारता था। जब वह पांचों भाई बनमें थे, उस समय घोषयात्रा के लिये उसी बनमें आए हुए दुर्योधन का गन्धर्वों के साथ युद्ध होगया और गन्धर्व उसको बांध कर ले चले। यह समाचार पाण्डवों को मिला। भीमसेन तो सुनकर प्रसन्न हुआ, कि हमारा शत्रु बांधागया है। पर युधिष्ठिर ने भीम अर्जुन आदि को आज्ञादी, कि जाओ दुर्योधन को छुड़ा कर लाओ, और कहा—

भवन्ति भेदा ज्ञातीनां कलहाश्च वृकोदर। प्रसक्तानि च वैराणि कुलधर्मो न नश्यति। २। यत्त्वं तु कश्चिज्जातीनां बाह्यः प्रार्थयते कुलम्। न मर्षयन्ति तत्सन्तो बाह्येनाभिप्रधर्षणम्। ३। (वन० २४३

हे भीमसेन! एक जाति वालों के भी भेद होते हैं, लड़ाइयां भी होती हैं, और वैर भी लगातार चलते हैं, इससे कुल का धर्म नष्ट नहीं होता। २। पर जब बाहर का

पुरुष अपनी जाति को दबाता है, तो भले पुरुष उस दबाव को जो बाहर से हुआ है, नहीं सहारते हैं। ३।

इसी प्रकार जब पाण्डव और कौरवों का युद्ध आरम्भ होने लगा, दोनों सेनाएं आमने सामने आगईं, उस समय युधिष्ठिर अपने शस्त्रों और कवचको उतारकर, रथ से उतर, हाथ जोड़, पदाति होकर भीष्मपितामह की ओर गया। सबने समझा, कि युधिष्ठिर अब भीष्म से डरकर उसकी शरणागत होता है। अतएव चारों ओर से धिक्कार आने लगी। अर्जुन आदि भी घबरा कर पीछे भागे, कि आर्य क्या कर ना चाहते हो। पर युधिष्ठिर चुपचाप आगे बढ़ता गया श्री-कृष्ण के समझाने से अर्जुन आदि तो जान गए, कि बड़ों की आज्ञा बिना महत्कार्यों का आरम्भ धर्म विरुद्ध है, इस लिये आज्ञा लेनेजारहा है। पर अन्य लोगों की धिक्कार और भी बढ़ गई। अब युधिष्ठिर ने पितामह के पास पहुंचकर पहले उन के चरणों पर प्रणाम किया और फिर कहा—

आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष त्वया योत्स्यामहे वयम्।
अनुजानीहि मां तात आशिषश्च प्रयोजय॥

(भीष्म० ४३। ३७)

हे नदबने वाले बीर तुझ से आज्ञा मांगता हूं, तेरे साथ हम युद्ध करेंगे। हे तात। मुझे आज्ञा दे और आशीर्वाद दे। ३७। भीष्म ने उत्तर में कहा—

प्रीतोऽहं पुत्र युध्यस्व जयमाप्नुहि पाण्डव।
यत्तेऽभिलषितं चान्यत् तदवाप्नुहि संयुगे। ३९
ब्रियतां च वरः पार्थ किमस्मत्तोऽभिकांक्षसि।
एवंगते महाराज न तवास्ति पराजयः। ४०

हे पुत्र! मैं प्रसन्न हुआ हूं, युद्ध कर और जय को प्राप्त हो। ३९। हे पृथा (कुन्ती) के पुत्र! वर मांग तू हम से क्या चाहता है, हे महाराज! ऐसी अवस्था में तेरा कभी पराजय नहीं है।४०।भीष्म से आशीर्वाद लेकर इसीप्रकार द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से आशीर्वाद लिये।

कुन्ती का सन्देश—जब सन्धि कराने के निमित्त कौरवों के पास श्रीकृष्णगये, तो वहां से लौटते समय कुन्ती ने अपने पुत्रों की ओर यह सन्देश भेजे।

ब्रूयाः केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
भूयस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः। ५
अंगावेक्षस्व धर्मं त्वं यथा सृष्टः स्वयम्भुवा।

बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टा बाहुवीर्योपजीविनः । ७

(उद्योग ० १३२)

हे कृष्ण! धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर को कहो। पुत्र! तेरा धर्म हीन होरहा है, वृथा जीवन मत बना। ५। बेटा अपने धर्म को देख, जैसा कि तुझे परमात्मा ने बनाया है। क्षत्रिय भुजाओं से उत्पन्न हुए हैं, वह भुजाओं के वीर्य से जीविका करने वाले हैं। ७। और कहा युधिष्ठिर को यह बात मेरे वचन से सुनाओ, कि क्षत्रिय मुचुकन्द को वैश्रवण ने पृथिवी देनी चाही थी, पर उसने लेने से यह कहतेहुए इन्कार किया कि—

" बाहुवीर्यार्जितं राज्यमश्नीयामितिकामये " १०

भुजबल से कमाए राज्य को मैं भोगूंगा यही मेरी कामना है। सो हे पुत्र!

भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषिर्नैवोपपद्यते। क्षत्रियोऽसि क्षतात् त्राता बाहुवीर्योपजीविता ।३१। पित्र्यमंशं महाबाहो निर्मग्नं पुनरुद्धर। ३२ ।

मांगकर लेना तेरे लिये निषिद्ध है, खेती भी तेरा काम नहीं है। तू क्षत्रिय है, क्षत (घाव) से बचाने वाला, भुज

बल ही तेरी जीविकाहै।३१। हेमहाबाहो! सो तू डूबेहुए पित्र्य अंश (पिता के भाग) को फिर उद्धार कर। और हे कृष्ण

एतद् धनंजयो वाच्यो नित्योद्युक्तो बृकोदरः।
९। यदर्थं क्षित्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः॥
१०॥ (उद्योग० १३७)

और अर्जुनको तथा सदा तय्यार भीमको यह कहो। ९। जिस काम के लिए क्षत्रिया जनती है, उसका समय यह आया है।

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतावुभौ।
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि।
१४। विक्रमाधिगता ह्यर्था क्षत्रधर्मेण जीवतः।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम। १५

क्षत्र धर्म में प्रेम वाले दोनों माद्री के पुत्रों को कहो। पराक्रम से कमाएहुए भोगों को जीवन से भी बढ़कर समझो। १४। क्योंकि हे पुरुषोत्तम (कृष्ण) पराक्रम से कमाए हुए अर्थ ही क्षत्रधर्म से जीने वाले मनुष्य के मन को सदा प्रसन्न करते हैं। १५।

(५)सेनापति भीष्म का रणभूमिमें योद्धाओं के प्रति धर्मोपदेश-

इदं वः क्षत्रिया द्वारं स्वर्गायापावृतं महत् ।
गच्छध्वं तेन शक्रस्य ब्रह्मणः सहलोकताम् ।८।
एष वः शाश्वतः पन्थाः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः ।
समाधावयध्वमात्मानमव्यग्रमनसो युधि । ९ ।
नाभागोऽथ ययातिश्च मांधाता नहुषो नृगः ।
संसिद्धाः परमं स्थानं गताः कर्मभिरीदृशैः । १०
अधर्मः क्षात्रियस्यैष यद् व्याधिमरणं गृहे ।
यदयोनिधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः । ११

(भीष्म ० १७)

. हे क्षत्रियो ! यह तुम्हारे स्वर्ग के लिये बड़ा द्वार खुला है, इससे इन्द्र और ब्रह्मा की सलोकता को प्राप्त हो । ८ । यह सनातन मार्ग तुम्हारा पूर्वों और पूर्वतरों (बड़ों और बड़ों के बड़ों) ने बनाया है, सो तुम युद्ध में एकाग्र मन होकर अपने आपका आदर करो । ९ । नाभाग, ययाति, मांधाता, नहुष, और नृग ऐसे कर्मों से सिद्धि पाकर परम स्थान को पहुंचे है । १० । घर में व्याधि से मरना क्षत्रिय के लिये अधर्म है, जो लोहे से मरना है, वह इसका सनातन धर्म है । ११ ।

भीष्म का अपूर्व वीरभाव—जब भाष्म शरशय्या (तीरों की शय्या) पर लेट गए, उस समय कारव और पाण्डव हाथ जोड़कर उसके चरणों के पास खड़े हुए। उसने उन सब को स्वागत किया, और कहा—**शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थमुपधानं प्रदीयताम्** " मेरा सिर बहुत लटक रहा है, (इसके नीचे) सिरहाना दो (भीष्म० १२०। ३४) इस आज्ञा को सुनते ही राजा लोग दौड़कर नर्म सिरहाने लाए। भीष्मने हंसतेहुए कहा,— "**नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः**" हे राजाओ! यह बीरशय्याओं में युक्तरूप नहीं हैं, (१२०।३६) और अर्जुन को कहा, तुम मुझे सिरहाना दो। अर्जुन ने तीन तीर सिर के नीचे पृथिवी पर छोड़े, जो भूमि में धसकर ठीक सिर का सहारा बन गए। तब भीष्म ने कहा :—

शयनस्यानुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया।
यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुषा।

(१२०। ४८)

हे अर्जुन शय्या के योग्य तूने सिरहाना दिया है। याद

तू भी (वीर धर्मों का जाननेवाला होकर) उलटा समझता, तो मैं तुझे क्रोध से शाप देता।

अहह! कैसा आश्चर्यवीर भाव है। इसी शरशय्या पर सोए हुए भीष्मपितामह शान्ति पर्व का उपदेश किया।

उद्योगपर्व—विदुर के उपदेश।

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेवच४०।५
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः।
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनःसुखम्।६।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम।७।

आलस्य, मदमोह, चपलता, गोष्ठि, उजड्डपन, अभिमान और लालच।५। यह सात विद्यार्थियों के सदा दोष माने गए हैं। जो सुखार्थी है, उसको विद्या कहां, विद्यार्थी को सुख नहीं है।६। इसलिये या तो सुखार्थी विद्या को छोड़ दे, वा विद्यार्थी सुख को छोड़ दे।

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवताजितम्३४।४७
शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति। स तस्य

जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः । ४८।

वस्त्र वाले ने सभा को जीत लिया, गौ वाले ने मीठे की आशा जीते ली, सवारी वाले ने मार्ग जीत लिया, और शील वाले ने सब कुछ जीत लिया । ४७ । पुरुष में शील ही प्रधान है, वह जिसका यहां नष्ट होजाता है, उसको न जीवन से प्रयोजन है, न धन से, न बन्धुओं से ।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च । अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ।३६।३०

वृत्त (अचरण) की यत्न से रक्षा करे, वित्त (धन) आता है और जाता है, वित्त से क्षीणहुआ भी क्षीण नहीं हुआ, पर जो वृत्त से हत हुआ, बस वह हत होगया ।

पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनःपुनः ।३५।६१। नष्टप्रज्ञः पुरुषः पापमेवाभिरोचते । पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः । ६२ । वृद्धप्रज्ञः पुरुषः पुण्यमेवाभिरोचते । पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्वगच्छति । ६३ । तस्मात् पुण्यं निषेवेत

पुरुषः सुसमाहितः ।

पाप, (मनुष्य की) प्रज्ञा को नष्ट करता है, ज्यों २ वह उसे बार २ करता है । ६१ । और जिसकी प्रज्ञा नष्ट होती है, वह फिर पाप को ही पसन्द करता है। पर पुण्य प्रज्ञा को बढ़ाता है, ज्यों २ वह उसे बार २ करता है । ६२ । जिसकी प्रज्ञा बढ़ी हुई है, वह फिर पुण्य को पसन्द करता है। पुण्य करता हुआ पुण्य कीर्ति वाला होकर पुण्य स्थान को प्राप्त होता है ।६३। इसलिये पुरुष को सावधान होकर सदा पुण्य का सेवन करना चाहिये ।

पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येनवृद्धः सुखं वसेत् ।
यावज्जीवेन तत्कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत् ३५।६८।

पहली अवस्था में वह काम करे, जिससे बड़ा होकर सुख से रहे। और सारी आयु से वह काम करे, जिससे मर कर सुखी बसे ।

स्कूलों में पढ़ाई के योग्य धार्मिक शिक्षा
की पुस्तकें

'वेद और रामायण के उपदेशरत्न'

वा

उपदेश कुसुमाञ्जलि प्रथम भाग -)

'वेद और महाभारत के उपदेशरत्न'

वा

उपदेश कुसुमाञ्जलि द्वितीय भाग -)

'वेद, मनुस्मृति और गीता के उपदेशरत्न'

वा

उपदेश कुसुमाञ्जलि तृतीय भाग -)।

मैनेजर

आर्षग्रन्थावलि लाहौर।

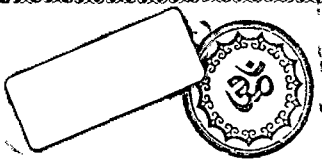

'वेद, मनुस्मृति और गीता के उपदेशरत्न'

प्रसिद्ध नाम

उपदेश कुसुमाञ्जलि।

तृतीय भाग

जिसको पं० राजाराम संस्कृत प्रोफैसर डी०ए०वी० कालेज लाहौर व सम्पादक आर्षग्रन्थावलि लाहौर ने सम्पादन किया।

'इस में परमात्मा की महिमा, प्रार्थना और धर्मोपदेश विषय के वेदमन्त्र, तथा मनुस्मृति और गीता के शिक्षाप्रद श्लोकों का संग्रह है'।

बाम्बे मैशीन यन्त्रालय लाहौर में
दुनीचन्द मैनेजर के अधिकार से छपी।

१३ अप्रैल १९०९ — मूल्य ⌐)।

वेदमन्त्राः ।

१—यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधि तिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।
(अथर्व० १० । ८ । १)

उस पर ब्रह्म को नमस्कार है, जो सारे भूत, भविष्यत् (और वर्त्तमान) का अधिष्ठाता है, और जिसका स्वरूप केवल आनन्दमय है।

२—अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः । तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्यो रात्मानं धीरमजरं युवानम् । (अथर्व० १० । ८ । ४४)

वह कामना से रहित है, धीर है, अमर है, और स्वयम्भू है, आनन्द से तृप्त है, किसी से न्यून नहीं। उसको, हां, केवल उसको—जोकि (सबका) आत्मा, धीर, अजर और युवा है—जानकर ही पुरुष मृत्यु से निर्भय होता है।

३—देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूना मसि चारुरध्वरे । शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमे अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव । (ऋग्० १ । ९४ । १३)

तू देवों का देव है, अद्भुत मित्र है, अमीरों का अमीर है, यज्ञ में सुहावना है। हम सदा तेरी उस शरण (पनाह) में रहें, जो बड़ी दूर तक फैली हुई है। हे अग्ने! हम तेरी मित्रता में मत हानि उठाएं।

४—यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम्। स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मारिषामा वयं तव।(ऋ० १।९४।२)

जिसके लिये तुम आप यज्ञ करनेवाले बनते हो, वह सफलमनोरथ होता है, शत्रुरहित हुआ निवास करता है, और बड़ी वीरता को धारण करता है। वह बढ़ता है, पाप उसको नहीं व्यापता, हे अग्ने! हम तेरी मित्रता में मत हानि उठाएं।

५—सनो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपावृधि। अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः।(ऋ० १।७०।६)

हे वीर! हे सच्चे दानी! (इन्द्र) हमारे लिये उस मेघ को खोल दो, तुम जो हमारे लिये कभी नांह नहीं करते हो।

६—एवाह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे।(ऋग्० १।८।८)

सचमुच इस (इन्द्र) की सच्ची और मीठी वाणी बड़ी उदार है, गौओंवाली है (दूध बहाने वाली है) और पूजनीय है, जिसने (उसके मार्ग में) दिया है, उसके लिये वह पकी हुए खाखा की नाई है।

७–अभ्यूर्णोति यन्नमं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम्। प्रेमन्धःख्यन्निः श्रोणो भूत्। (ऋग्० ८। ७९। २)

वह हरएक नङ्गे को ढांपता है, हरएक रोगी की चिकित्सा करता है, (उसकी कृपा से) अन्धा देख सक्ता है। और लङ्गड़ा चल सक्ता है।*

८–आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भ मन्तः। तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टु मभिसंयन्ति देवाः (अथर्व० ११। ५। ३)

आचार्य जब ब्रह्मचारी का उपनयन करता है, तो (उसके नए जन्म के लिये) उसको अन्दर गर्भ में करता है, उसको तीन

---

* मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्। यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्। जिसकी कृपा गूंगे को वाचाल बनाती है, और लंगड़े को पर्वत पार कराती है, उस परमानन्द परमात्मा की वन्दना करता हूं॥

रात उदरमें धारण करताहै,*जब वह उत्पन्न होता है,तो देवता उसको देखने के लिये उसकी ओर जाते हैं।

९—ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते (अथर्व११। ५। १७)

ब्रह्मचर्य से और तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। आचार्य ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचारी को चाहता है।

१०—पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति। तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्या भृतम् (अथर्व० ११)

प्रजापति के सारे पुत्र (सब मनुष्य) अपने आप में प्राणों को धारण करते हैं, पर उन सबको रक्षा वह ब्रह्म (वेद) करता है, जो ब्रह्मचारी में सम्पादन किया गया है।

११—अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि (यजु० १। ५)

---

*गर्भ में धारण करके अर्थात् अपना अन्तरंग बना कर तीन दिन उसको अपने हाथ से धार्मिक कार्य करवाता है।

हे अग्ने व्रत के पति ! मैं व्रत का आचरण करूंगा, उस को कर सकूं, और वह मेरा सफल हो। यह मैं झूठ से सत्य को प्राप्त होता हूं।

१२—यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्यमेधयाग्ने मेधाविनं कुरुस्वाहा। (यजु० ३२।१४)

हे अग्ने ! जिस मेधा को देवगण और पितर सेवनकरते हैं, उस मेधा से मुझे अब मेधावी बनाओ।

१३—एह्यश्मानमातिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः।
कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम्।
(अथर्व० २।१३।४)

(हे ब्रह्मचारिन्) इस चटान पर खड़े होजा, तेरा शरीर वज्र के तुल्य हो। सारे देवता तेरी आयु को सौ बरस करें।

१४—वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः। अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्। ऊर्वोरोजो जंघयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वात्मा निभृष्टः। (अथर्व० १९

मेरे मुख में वाणी हो, नासिकाओं में प्राण, आंखों में

दृष्टि, कानों में श्रुति (सुनने की शक्ति), बाल श्वेत न हों दान्त काले न हों, भुजाओं में बड़ा बल हो, रानों में शक्ति, जंघों में वेग, पांओं में खड़ा होने की शक्ति हो, मेरे सारे अङ्ग नीरोग हों और आत्मा निर्दोष हो।

१५—तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्ने स्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण। (यजु० ३। १७)

हे अग्ने! तू शरीर का रक्षक है, मेरे शरीर की रक्षा कर हे अग्ने! तू आयु का देने वाला है, मुझे आयु दे, हे अग्ने! तू कान्ति का देने वाला है, मुझे कान्ति दे, हे अग्ने! जो मेरे शरीर की ऊनता है उसको पूर्ण कर।

१६—प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये। (अथर्व १९। ६२)।

मुझे देवताओं में प्यारा बना, मुझे राजाओं में प्यारा बना, हर एक देखने वाले का मैं प्यारा होजाउं, चाहे शूद्र हो वा आर्य।

१७—आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसीजायतामाराष्ट्रे राजन्य शूर इषव्यो ऽतिव्याधी महारथो जायतां

दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्

(यजु० २२।२२)

हे ब्रह्मन् ! हमारे राष्ट्र (देश) में ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस (वेद और धर्म के तेज) वाला उत्पन्न हो, क्षत्रिय शूरवीर, शस्त्रों में निपुण, पूरा बींधने वाला, महारथी उत्पन्न हो, धेनु दूध देने वाली, बैल (बोझ) ढोने वाला, घोड़ा तेज, स्त्री सौन्दर्यवती (और पति पुत्रवती) उत्पन्न हो। इस यजमान के (घर)-रथ में बैठने वाला, जीतने के स्वभाव वाला, समर्थ, सभा के योग्य- वीर पुत्र उत्पन्न हो। (हमारे राष्ट्र में) मेघ हर एक कामना पर बरसे, हमारी ओषधियें बहुफलवती होकर पकें। हमारा योग क्षेम (अलब्ध का लाभ, और लब्ध की रक्षा) समर्थ हो।

१८-द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्ति रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्ति-र्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्ति रेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि (यजु० ३६ । १७)

द्यौ (हमारे लिये) शान्ति हो, अन्तरिक्ष शान्ति हो पृथिवी शान्ति हो, जल शान्ति हों, ओषधियें शान्ति हों वनस्पतियें शान्ति हों, सारे देव शान्ति हों, ब्रह्म शान्ति हो, हरएक वस्तु शान्ति हो, शान्ति ही शान्ति हो, वह शान्ति मेरी ओर आए।

मनुस्मृति के उपदेश।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्म मनुतिष्ठन् हि मानवः।
इहकीर्तिमवाप्नोति प्रेत्यचानुत्तमं सुखम्। २। ९।

श्रुति और स्मृति में कहे धर्म का अनुष्ठान करता हुआ पुरुष इस लोक में कीर्ति को प्राप्त होता है, और परलोक में उत्तमोत्तम सुख को।

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।२। ३६

आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः। ३८।

अतऊर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता ब्रात्या भवन्त्यार्य विगर्हिताः ३९

गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का उपनयन करे, गर्भ से ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय का, और गर्भ से बारहवें वर्ष वैश्य का। ३६। सोलह वर्ष तक ब्राह्मण की सावित्री (गायत्री) उलांघ नहीं जाती, बाईस तक क्षत्रिय की और चौबीस तक वैश्य की ३८। इसके पीछे यह तीनों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) जो ठीक समय पर संस्कृत नहीं हुए, वह सावित्री से पतित हुए ब्रात्य होजाते हैं, जो आर्यों में निन्दित हैं। ३९।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेवच। ४।९२

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः।
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ९३।

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः।२।१०३।

ब्राह्ममुहूर्त में जागे, और (उस दिन कमाने योग्य) धर्म और अर्थ का चिन्तन करे, और उनसे होने वाले शारीरिक क्लेशों का, तथा वेद के तत्त्व अर्थ का चिन्तन करे (९२) उठकर आवश्यक से निवृत्त होकर शौच करके एकाग्र होकर प्रातः सन्ध्या का जप करता हुआ चिर काल ठहरे, तथा अपने

लंघन पर सायं सन्ध्या का (जप करता हुआ। चरकाल ठहरे) ९४।
जो प्रातःसन्ध्याको नहीं उपासता, और न सायं सन्ध्याको उपासता है, उसको हरएक द्विजों के कर्म से शूद्र की न्याईं बाहर कर देना चाहिये। १०३।

सर्वेषामेवशौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् । योऽर्थेशुचिर्हि सशुचिर्नमृद्वारिशुचिः शुचिः। ५।१०६
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।१०९

सारी पवित्रताओं में से धन (कमाई) की पवित्रता उंची मानी गई है, जो धन में पवित्र है, वह पवित्र है, मट्टी और जल से पवित्र पवित्र नहीं। १०६। जल से अंग शुद्ध होते हैं, पर मन सत्य से शुद्ध होता है, भूतात्मा (सूक्ष्म शरीर) विद्या और तप से शुद्ध होता है, और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

स्वध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि।
दैवकर्मणि युक्तोहि बिभर्तीदं चराचरम् ॥३ ॥ ७५
अग्नौ प्रस्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः । ७६ ।

स्वाध्याय और दैवकर्म में यहां नित्य उद्यमी रहे, क्योंकि

दैवकर्म में तात्पर पुरुष इस सारे चर अचर का पोषण करता है। ७५। अग्नि में विधि से डाली हुई आहुति सूर्य को पहुंचती है, सूर्य से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न, उससे प्रजा होती है।

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्। दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः। २। ५४।

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति। अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्। ५५।

भोजन का नित्य आदर करे, और उसको न निन्दता हुआ खाए, देखकर प्रफुल्लित होजाए और प्रसन्न होजाए (अर्थात् पहले आए हुए क्रोधादि को भी भोजन के समय हटादे) और सर्व प्रकार से उसका स्वागतकरे। ५४। क्योंकि आदर किया हुआ भोजन बल और पराक्रम को देता है, और अनादर करके खाया हुआ वही इन दोनों (बल पराक्रम) का नाश करता है। ५५।

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी। एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्। २। १३६

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।

वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः । १३५

धन, बन्धु, अवस्था, कर्म और पांचवी विद्या, यह मान्य के स्थान हैं, इनमें से जो २ अगला २ है, वह पहले २ से बढ़कर है । १३६ । ब्राह्मणों की ज्ञान से ज्येष्ठता (बड़प्पन) होती है, क्षत्रियों की बल से, वैश्यों की धान्य और धनसे, जन्मसे केवल शूद्रों की होती है । १ ५५५ ।

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् । २ । १ १८
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।
नचैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् । १ ९९

गुरु के पास इसकी शय्या और आसन सदा नीचा हो, और गुरु के सामने यथेष्ट न बैठे (सभ्यता से बैठ, न कि जैसा जी में आया) । १९८ । परोक्ष में भी इसका नाम खाली न लेवे (अनावश्यक नाम न लेवे, आवश्यकता होने पर भी आदरसूचक पदवी वा शब्दों के साथ लेवे) और न इसकी गति, भाषण और चेष्टा की नकल करे । ११९ ।

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्

न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि २ । २२७ ।

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते । २२८ ।

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृता ।
अनादृतास्तुयस्यैतेसर्वास्तस्याफलाःक्रियाः । २३४ ।

मनुष्यों के जन्म(पालन और पोषण में) माता पिता जो क्लेश सहते हैं,उसकाबदला सैंकड़ों बर्षों में भीनहींदियाजासक्ता है । २२७ । चाहिये कि उन दोनों का नित्य प्रिय करे और सदा आचार्य का प्रिय करे, इन तीनों की प्रसन्नता में सारा तप समाप्त होता है । २२८ । जिसके यह तीनों आदर किये गए हैं, उसके सारे धर्म आदर किये गए हैं और जिसके यह अनादर किये गए हैं, उसके सारे कर्म निष्फल हैं ।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रम माविशेत । ३ ।२

यथाक्रम तीनों वेदों को वा दो वेदों को वा एक ही वेद को पढ़कर अखण्डित ब्रह्मचर्य वाला हुआ गृहस्थआश्रम में प्रवेश करे ॥

बुद्धिवृद्धिकरायणशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥१९
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्यरोचते ॥२०॥
ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥२१॥

बुद्धि के जल्दी बढ़ाने वाले, धनके बढ़ाने वाले, और हित का उपदेश करने वाले शास्त्रों को, और वैदिक निगमों को नित्य देखे । १९ । ज्यों २ पुरुष शास्त्र को देखता है, त्यों २ उसका ज्ञान बढ़ता है, और ज्ञान उसको पसन्द आता है ।२०। ऋषियज्ञ (स्वाध्याययज्ञ), देवयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ (अतिथि पूजा) और पितृयज्ञ को यथाशक्ति कभी न त्यागे ॥

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ४ । १३८ ।
अद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत् । शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित्सह । १३९ ।

सत्य बोले, प्रिय बोले, सत्य अप्रिय न बोले, और प्रिय असत्य न बोले, यह सनातन धर्म है।१३८। भला ही भला बोले, भला ही कहे*सूखा वैर और विवाद किसी के साथ न करे। १३९।

अधार्मिको नरो योहि यस्य चाप्यनृतं धनम्। हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते। १७०। न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत्। अधार्मिकानां पापाना माशु पश्यन् विपर्ययम्। १७१। नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव। शनैरावर्तमानस्तु कर्तु र्मूलानि कृन्तति। १७२। यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु। नत्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः। १७३। अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति। ततः सपत्नाञ्ज यति समूलस्तुविनश्यति। १७४।

वह मनुष्य जो अधार्मिक है, जिसकी कमाई पाप की है, और दूसरों के सताने में सदा रत रहता है, वह यहां सुख

* अभद्र विषय को भी भद्रवचन में ही कहे, जैसे मरने

से नहीं बढ़ता (फल फूलता)। १७०। धर्म से दुःखी होकर भी मनको अधर्म में न लगाए, जबकि देखता है, कि धार्मिक पापियों का लल्दी उलट पलट होजाता है। १७१। अधर्म आचरण किया हुआ लोक में पृथिवी की नाईं तत्क्षण नहीं फलता है। पर धीरे २ बढ़ता हुआ (अन्ततः) करने वाले की जड़ों को काटता है। १७२। यदि अपने में नहीं, तो पुत्रों में, यदि पुत्रों में नहीं, तो पौत्रों में और यदि पौत्रों में भी नहीं, तो प्रपौत्रों में फलता है, पर किया हुआ अधर्म करने वाले का कभी निष्फल नहीं जाता है। १७३। बेशक पहले अधर्म से बढ़ता है, फिर भलाई देखता है, फिर शत्रुओं को जीतता है, पर (अन्त में) जड़ समेत नष्ट होजाता है। १७४।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्। ६। २।
संत्यज्यग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैववा। ३।
वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत्। ३३।
[illegible]

सत्यपूतां वदेद् वाचं मनः पूतं समाचरेत् ।४६।

गृहस्थ जब अपना बली पलित (मांस पर बल पड़ने और बाल श्वेत) देखे, और सन्तान की सन्तान को देखले, तब बनका आश्रय ले। २। ग्राम्य आहार और सारी (ग्राम्य) सामग्री (वस्त्र पलंग गौ घोड़ा आदि) को त्यागकर, स्त्री को पुत्रों के पास अमानत करके वा साथ ही लेकर वन को जाए ३। बन में इस प्रकार आयु का तीसरा भाग बिताकर आयु के चौथे भाग में सारे संग(लगाव)त्याग करके संन्यास लेवे।३३॥ दृष्टि से पुना हुआ पाओं रक्खे, वस्त्र से पुना हुआ जल पिये, सत्य से पुनी हुई बाणी बोले, और मन से पुना हुआ आचरण करे। ४६॥

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्य माश्रमि भिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः। ६।९१
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्। ९२।
दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।
अधीत्यचानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्। ९३।

इन चारों आश्रम वाले द्विजों को दस लक्षणों वाला धर्म

नित्य प्रयत्न से सेवन करना चाहिये । ९१ । धैर्य, क्षमा, मनको रोकना, चोरी का त्याग, (बाहर भीतर की) शुद्धि, इन्द्रियों का निग्रह, (शास्त्र और लोक से) बुद्धि (का बढ़ाना) आत्मा का ज्ञान, सत्य और अक्रोध यह दशक (दहाका) धर्म का स्वरूप है । ९२ । जो विप्र धर्म के दस स्वरूपों को पढ़ते हैं, और पढ़कर अनुसार चलते हैं, वह परमगति को जाते हैं ।९३।

धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः । परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् । ४ । २३८। नामुत्रहि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः । २३९। एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते । एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् । २४० । मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठ समं क्षितौ । विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ।२४१। तस्माद् धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः । धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ।२७२। धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् । परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम्

रिणम् १४३

परलोक में सहायता के लिये किसी भी प्राणी को पीड़ा न देता हुआ धीरे २ धर्म को सञ्चय करे, जैसे दीमक बांबी को (धीरे २ बनाती है)। १३८। क्योंकि परलोक में सहायता के लिये पिता और माता खड़े नहीं होते, न पुत्र और स्त्री, न ज्ञाति के लोग, वहां केवल धर्म खड़ा होता है ।२३९। जीव अकेला उत्पन्न होता है, और अकेला ही लीन होता है, अकेला अपने सुकर्म को भोगता है और अकेला ही दुष्कर्म को।२४० बन्धुजन मरे हुए शरीर को काठ और ढेले की तरह पृथिवी पर त्याग कर बेमुख हुए चले जाते हैं, धर्म उसके साथ जाता है २४१। इसलिये धर्म को सहायता के लिये धीरे २ नित्य सञ्चय करे। क्योंकि धर्मरूप साथी से दुस्तर अन्धेरे को तर जाता है। २४२। वह पुरुष जो धर्मप्रधान है, और तप से जिस के पाप नष्ट होगए है, धर्म उसको चमकाता हुआ और आकाश शरीरी बनाकर परलोक में लेजाता है। २४३।

गीता के उपदेश।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि २।४७।

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।४८

कर्म में ही तेरा अधिकार है, फलों में कभी नहीं। तू कर्म के फल का हेतु मत बन, और न ही कर्महीन होने में तेरा लगाव हो। ४७।

हे धनंजय योग में स्थित हुआ संग (लगाव) को त्याग कर सिद्धि और असिद्धि दोनों में सम (हर्ष विषाद से शून्य) होकर कर्म कर, (यह सिद्धि असिद्धि में) सम होना योग कहलाता है। ४८।

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते। संगात्
संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते। २६। २
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।६३
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसाद मधिगच्छति।६४।
प्रसादे सर्व दुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते। ६५।

विषयों का ध्यान करते हुए पुरुष का उनमें लगाव हो जाता है, लगाव से कामना(भोगने की इच्छा) उत्पन्न होती है, कामना से क्रोध उत्पन्न होता है(जब कामना पूरी नहो,तो क्रोध उत्पन्न होता है) ।६२।क्रोध से संमोह होता है (करने योग्य और न करने योग्यका विचार नहीं रहता है)संमोहसे स्मृतिका भ्रंश, स्मृतिके भ्रंशसे बुद्धिका नाश होता है । (अर्थात् बुद्धिकार्य और अकार्यकी विवेचना के योग्य नहीं रहती)और बुद्धिके नाश से नष्ट होजाता है।६३। जिसका मन अपना आज्ञाकारी है,वह पुरुष रागद्वेष से वियुक्त हुए और अपने आज्ञाकारी बने हुए इन्द्रियों से विषयों को उपलब्ध करता हुआ प्रसन्नता (अन्तःकरण की निर्मलता) को प्राप्त होता है ।६४। प्रसन्नता में इसके सारे दुःखों की हानि होजाती है, और प्रसन्न चित्त वाले की बुद्धि शीघ्र निश्चल होजाती है । ६५ ।

यज्ञाशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।३।१३
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः । १४ ।
कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् । तस्मात्

सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् । १५ । एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः । अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति । १६ ।

यज्ञशेष के खाने वाले होकर सारे पापों से छूट जाते हैं, पर वह पापी निरा पाप खाते हैं, जो अपने निमित्त ही पकाते हैं। १६ । अन्न से सारे प्राणी उत्पन्न होते हैं, वह अन्न मेघ से उत्पन्न होता है, मेघ यज्ञ से होता है, और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है। १४। कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ जान, वेद अविनाशी (ब्रह्म) से उत्पन्न हुआ है, इसलिये सर्वत्र पहुंचा हुआ भी ब्रह्म यज्ञ में सदा प्रतिष्ठित है । १५। सो इसप्रकार के चले हुए चक्र का जो अनुष्ठान नहीं करता है, वह पापकी आयु वाला और इन्द्रियों में तृप्त पुरुष हे अर्जुन ! व्यर्थ जीता है (जो अनुष्ठान करता है, वही जगत्का उपकारक पुरुष धन्य है। १६

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः । ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति मचिरेणाधिगच्छति । ४। ३९

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति । नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः । ४०

जो श्रद्धावान् है, तत्पर है, और इन्द्रियों को वश में

किये हुए है, वह ज्ञान को पाकर बहुत जल्दी परम शान्ति को प्राप्त होता है। ३९। और अज्ञानी, श्रद्धाविहीन, संशयात्मा पुरुष नष्ट होजाता है, संशयात्मा का न यह लोक है, न परलोक है, और न उसको सुख होता है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु रात्मैवरिपुरात्मनः।६।५।
बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्। ६।

स्वयं अपना उद्धार करे, अपने आपको फिसलने न दे क्योंकि आपही अपना बन्धु है और आपही अपना शत्रु है। ५। उसका आत्मा आप अपना बन्धु है, जिसने अपने आप को अपने आप से जीता है, पर जिसने अपने आपको बस में नहीं किया है, उसका अपना आपही शत्रुता में शत्रु की नाईं बर्तता है। ६।

आयुः सत्त्व बलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः
स्निग्धाःस्थिरा हृद्या आहाराःसात्विक प्रियाः१७।८
कट्वम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्ष विदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः। ९।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् । १० ।

आयुः, उत्साह, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति के बढ़ाने वाले, रसवाले, स्नेह वाले, स्थिर (देह में अपने रस के अंश से चिरकाल ठहरनेवाले) और (देखते ही) हृदय को प्यारे लगने वाले आहार सात्विक पुरुषों को प्यारे होते हैं।८। कौड़े, खट्टे, सलूने और अति उष्ण, तीखे, रूखे, विदाही (जलाने वाले राई आदि) ऐसे आहार रजोगुणी लोगों को प्यारे होते हैं' जो (परिणाम में) दुःख शोक और रोग के देने वाले हैं । ९ । देर का बना हुआ, रस से हीन हुआ, दुर्गन्धि, वासी, जूठा और अमेध्य (अपवित्र) भोजन तमोगुणियों का प्यारा है। १० ।

देव द्विज गुरु प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् । ब्रह्मचर्य्य महिंसा च शारीरं तप उच्यते । १७ । १४ ।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं चयत् । स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते । १५ ।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धि रित्येतत् तपो मानस मुच्यते । १६ ।

देव, ब्राह्मण, गुरु, और प्राज्ञों (दानाओं) की (पूजा, अन्दर

3288

बाहरकी)शुद्धि, (वेष और आकार में) सरलता, ब्रह्मचर्य्य, और अहिंसा (किसी को पीड़ा न पहुंचाना) यह कायिक तप कहलाता है। १४। वाक्य जो उद्वेगकारी (क्षोभकारी) न हो, सत्य हो, प्रिय और हित हो, तथा स्वाध्याय का अभ्यास, यह वाचिक तप कहलाता है। १५। मन की सफाई (राग द्वेष से रहित होना), सौम्यभाव (मन का दूसरों की भलाई में झुके रहना) मौन, मन को वश में रखना,और भावना की शुद्धि, यह मानस तप कहलाता है। १६।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्।२०

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्। २१।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्। २२।

देना है इस भावना से जो दान बदला न देने वाले को दिया जाता है, और देश, काल तथा पात्र में दिया जाता है, वह दान सात्विक मानागया है।२०। पर जो प्रत्युपकार के लिये वा फल का उद्देश्य करके दिया जाता है, और तंग होकर दिया जाता है, वह राजस दान माना गया है। २१। जो दान बिना देश काल

के दिया जाता है, बिना सत्कार किये या अनादर से दिया जाता है, वह तामस दान कहा गया है। २२।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्या कार्ये भया भये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी। १८।३०
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।३१।
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।३२।

हे अर्जुन! सात्विकी बुद्धि वह है, जो प्रवृत्ति, निवृत्ति, कार्य अकार्य, भय, अभय, बन्ध और मोक्ष को ठीक समझती है।३० और जिससे धर्म, अधर्म, कार्य और अकार्य को पूरी तरह नहीं जानता है, वह हे अर्जुन! राजसी बुद्धि है। ३१। और जो अन्धकार से ढपी हुई अधर्म को धर्म मानती है और सब बातों को उलटा समझती है, हे अर्जुन! वह बुद्धि तामसी है। ३२।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।३७।
विषयेन्द्रिय संयोगात् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।

परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्। ३८।
यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्राऽऽलस्य प्रमादोत्थं तत्सुखं तामसंस्मृतम्।

जो आरम्भ में विष की नाईं है और परिणाम में अमृत के तुल्य होजाता है, वह सुख सात्विक कहागया है, जो कि अपनी बुद्धि की निर्मलता से उत्पन्न होता है। ३७। विषयों और इन्द्रियों के संयोग से जो आरम्भ में अमृत के तुल्य होता है, और परिणाम में विष के तुल्य होजाता है, वह सुख राजस माना गया है।३८। जो आरम्भ में और परिणाम में अपने आपको धोखा देनेवाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होनेवाला सुख तामस कहागया है। ३९।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः। १८। ४१।

शमो दम स्तपः शौचं क्षान्ति रार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्। ४२।

शौर्य्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्। ४३।

कृषि गौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् । ४४ ।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु । ४५

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्व मिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः । ४६

हे परंतप ! (हे शत्रुओं के तपाने वाले!) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म उनके स्वभाव से उत्पन्न होने वाले गुणों से बांटे गए हैं। ४१। मन का निग्रह, इन्द्रियों का निग्रह, तप, अन्दर बाहर की पवित्रता, क्षमा, सरलता, (धर्म और ब्रह्म का) ज्ञान, और (पदार्थ विद्या का) विज्ञान, और आस्तिकपन (धर्म पर विश्वास), यह ब्राह्मण का कर्म स्वभाव से उत्पन्न होने वाला है। ४२। शौर्य, तेज, धैर्य, उत्साह, और युद्ध में न भागना, दान और ईश्वरभाव (प्रभुता, उन्मार्ग वृत्तियों को रोकने की शक्ति) यह क्षत्रिय का कर्म स्वभाव से उत्पन्न होनेवाला है। ४३। खेती, गौओं की रक्षा, और वाणिज्य (सौदागरी) यह वैश्य का कर्म स्वभावज है, और सेवारूप कर्म शूद्र का भी स्वभावजन्य है। ४४। अपने २ कर्म में रत हुआ पुरुष सिद्धि को प्राप्त होता है। अपने कर्म में रत हुआ जिस तरह सिद्धि को पाता है, वह सुन। ४५। जिससे सारे भूतों की प्रवृत्ति है, और जिसने यह सब जगत् फैलाया है, अपने कर्म से उसको पूजकर मनुष्य [illegible] होता है। ४६

7848